नया नगर की सुन्दरी

रूपलाल बेदिया

वह टूटी-फूटी दड़बेनुमा झोपड़ी में रहती थी। जब मैंने पहली बार उसे देखा था या यों कहें कि सहसा किसी दुर्घटना की तरह दिख गयी थी तो अन्तर्मन में कई प्रकार के सवाल उठे थे। आदिवासी बहुल उस सुदूर ग्रामीण क्षेत्र में सड़क निर्माण का कार्य चल रहा था। इसी की निगरानी के लिए मुझे एक सहायक के साथ भेजा गया था। जिस ग्रामीण क्षेत्र में सड़क निर्माण हो रहा था वहां हम जैसे शहरियों के लिए दूर-दूर तक कोई ठौर नजर नहीं आ रहा था। ग्रामीणों में शहरियों के प्रति एक स्वाभाविक सन्देह और अविश्वास की भावना रहती है।

हमारी इच्छा थी कि गांव में ही किसी के घर का एक कोना मिल जाता तो हम दोनों वहीं रह लेते। इससे हमें काम-काज में भी सुविधा होती और मजदूरों से एक तरह का रिश्ता कायम करने में मदद मिलती।

पांच-छह दिनों तक तो हम शहर से ही आ-जाकर काम चलाते रहे। लेकिन रोज-रोज यह सम्भव न था। अपनी बाईक से नित्य दोनों ओर से मिलाकर एक सौ दस किलोमीटर की दूरी तय करना कमाई अठन्नी और खर्चा रुपया जैसी बात थी। अतः हमने झिरगा मांझी से बात की। वह उसी इलाके का एक ग्रामीण था और सड़क निर्माण कार्य में हमने उसे ग्रामीणों एवं हमारे बीच संयोजक की भूमिका निभाने के लिए सहयोगी के तौर पर रख लिया था। अनजान जगह में गांव के ही किसी व्यक्ति का सहयोग मिल जाने से काम करवाना आसान हो जाता है।

झिरगा मांझी के चेहरे पर थोड़े असमंजसता के भाव आये। उसने कुछ सोचकर कहा, 'आप लोग का रहने लायक तो गांव में किसी का घर नहीं। सबके मिट्‌टी के छोटे-छोटे घर हैं और सबके यहां मुर्गी-चेंगना, गाय-गरू, भेड़-बकरी सब हैं। किसी का घर खाली नहीं मिलेगा। आउर अगर कहीं मिलियो जाता है तो आप लोग एहां रह नहीं सकेंगे।'

'क्यों? हम क्यों नहीं रह सकेंगे?' मैंने जानना चाहा। इस पर उसने बताया, 'सहर जइसा सुबिस्ता एहां नहीं न है। एहां दिसा-मैदान के लिए बाहर जाना होता है, नाला-डोभा का पानी पीना पड़ता है, झूरी-काठी से खाना बनाना पड़ता है। ई सब आप लोग से नहीं होगा। आउर भी कय किसिम का परेसानी है।'

उसकी बातें सुनकर गांव के वातावरण को, उन आदिवासियों की जीवन-शैली को करीब से जानने की मेरी इच्छा जाग्रत हुई। अतः मैंने सुविधा-असुविधा का ख्याल किये बिना कह दिया, 'देखो झिरगा, इन सब बातों की चिन्ता तुम मत करो, वह सब हम कर लेंगे।'

झिरगा का चेहरा साफ बता रहा था कि वह गहरी दुविधा में है। उसने कहा, 'हम आउर आदमी लोग से पूछ के बताएंगे।'

माघ के दूसरे हफ्ते की एक रक्तवर्णी शाम को झिरगा मांझी के कहने पर सारे ग्रामीण अखाड़े में उपस्थित हुए। ज्यादातर की ऊपरी देह पर कपड़े नहीं थे। मात्र कमर के नीचे और घुटनों के ऊपर तक का हिस्सा ही मटमैले कपड़ों, जो सम्भवतः

हफ्ते-दस दिनों से धुले नहीं थे, से ढंका हुआ था। यदि लाज छिपाने की जरूरत नहीं होती या इसका ज्ञान नहीं होता तो शायद बिल्कुल नंग-धड़ंग हमारे सामने आ खड़े होते। कुछ तो सड़क पर दिनभर काम करके अपने घर भी नहीं गये थे। गैंता, कुदाल, बेलचा, झोड़ा, टोकरी, भार-बहंगी के साथ सीधे अखाड़े में आ गये थे और सूखी धूलभरी जमीन पर हाथ-पांव सिकोड़कर ऐसे बैठ गये थे जैसे वे कोई अपराधी हों। केवल उनकी आंखों में एक जिज्ञासा टिमटिमा रही थी। उनके पूरे शरीर पर विशेषकर हाथों और पैरों में सम्भवतः मैल की मोटी परत जमी होने के चलते उनकी काली देह और काली लग रही थी। मैं उन मजदूरों को कई दिनों से रोज देख रहा था, पर उस दिन पहली बार उनके शरीरों को गौर से देख रहा था- गठीले और मजबूत लगने वाले उन शरीरों में पसलियां स्पष्ट दिख रही थीं। पिचके गाल, धंसी हुई आंखें, मोटे होठ, चपटी नाक, अधनंगी गात और अबूझ भाषा। खास मेरे और मेरे सहायक के लिए एक पुरानी खाट लायी गयी थी। उस पर बैठे-बैठे मैं अपने विचारों में खोने लगा- आदिमानव कैसे लगते होंगे। गुफाओं और कन्दराओं में रहने वाले कदाचित ठीक वैसे ही लगते होंगे जैसे ये आदिवासी बिल्कुल निर्वसन होने पर लगेंगे। तो क्या इनका जीवन सभ्यता के विकास में शामिल नहीं था? क्या इनकी सभ्यता अलग थी? या आज भी ये एक अलग सभ्यता में जी रहे हैं? एक ऐसी सभ्यता में जिसमें जीने वालों को खुद पता नहीं कि सभ्यता किसे कहते हैं? उसका विकास क्या है...!

'अरे देड़पे...देड़पे...देड़पे (भागो...भागो. .. भागो)...!' बदहवास-से लोग भाग खड़े हुए। इस बदहवासी ने मेरी चिन्तन धारा को विराम दिया। देखा-दो बैल, एक के पीछे दूसरा, तेजी से भागते हुए इधर ही आ रहे थे। आसन्न संकट को देखते हुए हम दोनों ने अपने पांव खींच लिये और झटके से खाट पर खड़े हो गये। उस पुरानी खाट की कमजोर डोरियां हमारा भार वहन न कर सकीं और हमारे पैर नीचे धंस गये एवं हम उसी खाट पर गिर पड़े। हमारी तो सांस ही रुक गयी थी। भला हुआ उनके पैर हमारे पांवों पर नहीं पड़ें।

कोई ग्रामीण बुदबुदाया, 'ई सारा गरू सब भी अदमिए तरफ भागता है।' फिर सभी हंसने लगे।

दरअसल, वह गोधूलि की वेला हो रही थी और चरवाहों द्वारा गाय-बैलों को वापस लाने के वक्त दो बैल आपस में लड़ गये। जब एक भाग खड़ा हुआ तो दूसरा उसे दौड़ाये जा रहा था। ग्रामीणों ने बताया कि दो घरों के बैलों में जन्मजात वैर होता है। जहां भी आमने-सामने पड़े नहीं कि लड़ पड़ते हैं। फिर सींग टूटे या आंख फूटे, कोई परवाह नहीं। लड़ जाने पर इन्हें छुड़ाना भी मुश्किल होता है। इसलिए चरवाहे इस बात का ध्यान रखते हैं कि ऐसे लड़ाकू बैल आपस में मिलने न पाएं। हमें यह भी जानकारी मिली कि पराजित होकर जब कोई बैल भागता है तो वह आदमियों की ओर ही भागता है, शायद इस ख्याल से कि कोई आदमी उसे उसके प्रतिद्वन्द्वी से बचा लेगा।

मैं फिर विचारों के झुरमुट में विचरने लगा- मैंने सुना था, कुत्तों की आपस में पटरी नहीं खाती। एक दूसरे पर नजरें पड़ीं नहीं कि भौंकते हुए काटने को दौड़ पड़ते हैं। लेकिन बैलों के साथ भी यही बात! क्या सभी प्राणियों में लड़ने की प्रवृत्ति आवश्यक रूप से निहित होती है? आखिर वे आपस में मिलजुलकर रहना क्यों पसन्द नहीं करते? लेकिन ये बेचारे पशु ही तो हैं। इनमें इतना विवेक कहां से आएगा। इतनी समझदारी होती तो पशु और मनुष्य में क्या फर्क रहता। पर क्या सचमुच पशुओं और मनुष्यों में फर्क होता है? मनुष्यों में तो कदाचित अधिक वैमनस्य होता है। हां, एक अन्तर है कि पशु सीधे-सीधे लड़ पड़ते हैं जबकि आदमी पीछे से वार करने की फिराक में रहता है।

'माफ करना भाई, थोड़ा देरी हो गया।' हाफ शर्ट और लुंगी पहना हुआ झिरगा मांझी उस भीड़ में कुछ अलग रहा था। अब धुंधलका घिर आया था। अखाड़े के अगल-बगल के आंगनों-घरों से मुर्गे-मुर्गियों और उनके चूजों की चां-चीं, कां-कों, कट-कोट की आवाजें आने लगी थीं। वहीं पेड़ों पर पक्षियों के जमावड़े हो गये थे जहां से उनका कलरव गूंजित हो रहा था। वातावरण में हल्का ठंडापन आ गया था। हल्की हवा के झोंकों से अखाड़े के किनारे स्थित इमली के विशाल पेड़ के पत्ते और छोटी टहनियां हौले-हौले झूम रही थीं। एक सुखद अनुभूति हो रही थी। एक ऐसी अनुभूति जिसे मैंने शहर में कभी महसूस नहीं किया था।

झिरगा मांझी ने सबको हमारा प्रयोजन बताया। हम इसी की प्रतीक्षा में थे कि जल्दी से जल्दी बात हो जाए ताकि शहर लौट सकें।

झिरगा की बात सुनकर सभी ग्रामीण आपस में खुसर-फुसर अबूझ भाषा में करने लगे। वैसे तो कोई भी भाषा अबूझ नहीं होती। चूंकि उनकी भाषा हमारे पल्ले नहीं पड़ रही थी, इसलिए हमारे लिए अबूझ थी। अतः हम यह समझ पाने में असमर्थ थे कि उन्हें हमारा प्रस्ताव स्वीकार है या नहीं। कुछ देर बाद बोदरा मांझी ने झिरगा मांझी से पूछा, 'नुकू दिकू तनाकू?' (ये लोग दिकू हैं?) हमारी नजरें झिरगा मांझी की आंखों में गड़ गयीं। उसने हमारा आशय समझते हुए कहा, 'ई लोग पूछ रहा है कि आपलोग दिकू हैं का?'

'दिकू! यह क्या होता है?'

'दि.... दि... दिकू...' झिरगा को जैसे कोई जवाब नहीं सूझा, 'ऐसा करिए सर, आप लोग अपना नाम बता दीजिए।'

'नाम!' मैंने मुस्कुराते हुए बताया, 'मेरा नाम महेश्वर सिंह है और.....।'

'और मेरा नाम मदन शर्मा है।' मेरे सहायक ने कहा।

सभी ग्रामीण आपस में जोर-जोर से बतियाने लगे जिसे समझना हमारे बूते में नहीं था। लेकिन उनके हाव-भाव से स्पष्ट लग रहा था कि उन्हें हमारा प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं है। हमने झिरगा मांझी को प्रश्नात्मक निगाहों से देखा। उसने बताया, 'ई लोग कहता है कि दिकू को रहने के लिए घर नहीं देंगे।'

'दिकू! आखिर यह दिकू होता क्या है?' मैंने आश्चर्य से पूछा। इस पर सभी व्यंग्यात्मक हंसी हंसते हुए आपस में बतियाने लगे। शायद वे कह रहे थे कि देखो, कैसा भोला बन रहा है! दिकू होकर दिकू का मतलब नहीं जानता!

झिरगा मांझी को फिर जवाब देते नहीं बना, 'दि...दि... दिकू माने..., छोड़िए सर, कभी बाद में बताएंगे। अभी आपलोग जाइए आउर रहने का कोई आउर जघा खोजिए, एहां घर कोई नहीं देगा।'

हम खामोशी से लौट आये थे। दूसरे दिन शहर के आखिरी छोर पर किराये का एक कमरा लिया। अब वहां से साईट की दूरी कम हो गयी थी जिसे हम बाईक से एक घण्टे में तय कर सकते थे।

मदन शर्मा को सुबह देर तक सोने की आदत थी। सूर्योदय के पूर्व कभी बिस्तर छोड़ता ही नहीं था। परन्तु मेरी आदत कुछ अलग थी। मुंह अन्धेरे उठकर जब तक डेढ़-दो किलोमीटर टहल नहीं लेता, मेरी दिनचर्या अधूरी-सी लगती। अतः इस नये ठिकाने पर आने के बाद सबसे पहले मैंने पता लगाया कि आस-पास कोई पार्क या ग्राउण्ड है अथवा नहीं। पता चला कि लगभग चार सौ गज की दूरी पर एक मैदान है जिसे कोढ़िया मैदान कहा जाता है। मैदान से सटे एक कॉलोनी बसायी गयी है जिसमें कुष्ठरोगियों को बसाया गया है, यानी एक अलग दुनिया।

मुझे थोड़ा अटपटा-सा लगा। कोढ़ियों की बस्ती के पास टहलना क्या ठीक रहेगा? कहीं...। लेकिन प्रथम दिवस को ही जब उस मैदान की तरफ रुख किया तो सड़क पर कई स्त्री-पुरुष जोड़े में या फिर अकेले ही टहलते हुए मिल गये। उनमें से कुछ धीमे-धीमे चल रहे थे, जबकि कुछ इस तरह तेजी से चल रहे थे जैसे उनकी ट्रेन छूटी जा रही हो। मैंने सोचा, इन टहलने वालों में से कुछेक को छोड़कर सभी किसी न किसी रोग से ग्रस्त होंगे और डॉक्टर ने सलाह दी होगी कि निरोग रहना चाहते हो, जीने की चाहत है तो मॉर्निंग वॉक किया करो। यह परेशानी अधिकतर शहरियों को रहती है।

मैंने टहलते हुए भेड़ा पुल पार किया। इस पुल के बारे में एक किंवदन्ती है कि उसे बार-बार बनाया जाता और हर बार बरसात में ढह जाता था। बाद में आसपास के ग्रामीणों ने बताया कि उस गड्ढे में एक भूत रहता है। वही पुल को तोड़ देता है। फिर उन्हीं के सुझाव पर वहां एक भेड़ की बलि दी गयीं। तब से यह पुल आज तक मौजूद है। उस पुल के तुरन्त बाद एक छोटा-सा मैदान दिखाई दिया। वहां कई लोग चक्कर लगा रहे थे। किशोर और युवा वय के लड़के दौड़ लगा रहे थे, वहीं मेरे जैसे चालीस-पचास की अवस्था वाले तेज कदमों से चल रहे थे। एक छोर पर कुछ बुजुर्ग किस्म के लोग आसन जमाये बैठे थे। जो रामदेव बाबा की नसीहतों को मानने के लिए कटिबद्ध लग रहे थे। उस मैदान के दूसरे छोर पर एक कॉलोनी दिखाई दी। मुझे विश्वास हो गया कि यही कोढ़िया मैदान है।

इस नयी जगह में मॉर्निंग वॉक का मेरा पहला दिन होने तथा किसी से जान-पहचान न रहने की वजह से मैं खामोशी से कुछ देर टहला और फिर वापस लौटने लगा। अब भुवन भाष्कर उदित होने वाले थे। रात का तिमिर गायब हो चुका था और पूर्व की ओर आसमान में लालिमा छा गयी थी।

लौटते हुए अभी भेड़ा पुल पार किया ही था कि भद्दी-भद्दी गालियां देती किसी स्त्री का स्वर सुनाई दिया। मेरे पांव ठिठक गये। मैंने दायीं तरफ मुड़कर देखा- एक पैंसठ-छियासठ साल की स्त्री जो कदाचित उम्र से अधिक वय की लग रही थी, एक छोटी-सी झोपड़ी के सामने खड़ी होकर अपने दोनों हाथों को जोर-जोर से इधर-इधर फेंकते हुए निरन्तर गरिआयें जा रही थी। ऐसी भद्दी गालियां जिन्हें आज तक नहीं सुना था और जिन्हें शब्दों में व्यक्त कर पाना भी मेरे लिए बेहद मुश्किल है।

अब तो आप समझ ही गये होंगे कि यह वही झोपड़ी है जिसकी चर्चा प्रारम्भ में ही कर चुका हूं। सालों की अनधुली, फटकर चिथड़े में तब्दील हुई-सी साड़ी में जबरदस्ती अपनी लाज छिपाती-सी लिपटी उस स्त्री की ऊपरी देह पर कोई वस्त्र नहीं था। बस, ले-देकर वही एक तथाकथित साड़ी जिसे साड़ी कहना भी अजीब-सा लगता है, ऊपर-नीचे दोनों जगह की लाज छिपाने में खुद को असहाय महसूस कर रही थी। मैंने उसके इर्द-गिर्द नजरें दौड़ायीं, कोई दिखाई नहीं दिया। मैं बेहद विस्मय से भर गया कि वह किसे गाली दे रही है, और वह भी इतनी सुबह-सुबह! वह मुहल्ला सम्भ्रान्त लोगों का लगता था। सभी तरफ बड़े-बड़े शानदार मकान बने हुए थे जिनमें कुछ तो बहुमंजिले थे। एक और आश्चर्य! बड़ी-बड़ी इमारतों के इस सम्भ्रान्त मुहल्ले के किनारे ही सही, यह झोपड़ी चांद में धब्बे की तरह लग रही थी। वह झोपड़ी सड़क से कुछ ही गज की दूरी पर थी, जिसके कारण वह स्त्री और झोपड़ी मेरी आंखों के सामने थी।

मुझे लगा- वह जरूर पागल औरत होगी। लेकिन तुरन्त ही मेरी दूसरी सोच ने झटका

दिया- अगर पागल भी है तो इस मुहल्ले में कैसे आयी? उसे किसने बसाया? उसकी झोपड़ी किसने बना दी? क्या खुद ने? क्या वह उसी मुहल्ले के किसी परिवार की सदस्या है? और पागल है तो लोग इसका इलाज क्यों नहीं करवाते?

फिर सोचा कि शायद लोग इस पचड़े में पड़ना नहीं चाहते होंगे। आज की बदली हुई व्यक्तिवादी सोच में लोग अपनों का ख्याल नहीं रखते तो इस पागल औरत का ख्याल कौन रखेगा। वैसे ही पागल व्यक्ति से सभी डरते हैं। पागलपन में वह ताकत होती है कि एक साथ कई-कई बलवानों को दौड़ा सकता है, भगा सकता है।

मैंने लक्ष्य किया कि वह मेरी ही ओर देख रही है। उसके पागल होने का सन्देह मन में था ही। लगा, कोई ईंट-पत्थर उठाकर मुझ पर फेंक न मारे। यह ख्याल आते ही मेरे शरीर में रोमांच-सा हो आया। उसी क्षण वह मेरी ओर लक्ष्य करके जोर से चीखी, 'का देखता है रे? हमको नहीं देखा है का?' मुझे काटो तो खून नहीं। यकीन-सा हो गया कि यह पागल ही है। अतः मैं बिना एक क्षण रुके अपने पथ पर बढ़ गया।

मेरी मजबूरी थी कि सुबह भ्रमण की आदत छोड़ नहीं सकता था और यह भी विवशता कि प्रति सुबह उसी ओर जाना था, क्योंकि टहलने के लिए खुली जगह और थी नहीं। फलतः टहलकर लौटते समय प्रतिदिन यह दृश्य नजर आता। वही एक पगली बुढ़िया, वही सुअरों के दड़बे जैसी छोटी-सी झोपड़ी, वही कर्णछिद्रों को भेदते हुए भद्दी गालियों के स्वर, वही पूर्व में आसमान पर गहराता हुआ-सा पीला प्रकाश, वही दिनकर के आने की वेला।

अब उस जगह से गुजरते हुए अनायास मेरी नजरें उस ओर उठ जाया करतीं, परन्तु चुपके-चुपके। इस तरह जैसे वह समझ न पाए कि मैं उसे देख रहा हूं। और मेरे पांव? वे अब उस जगह रुकते नहीं थे, बल्कि उनमें और तेजी आ जाती थी मानो उसने देख लिया तो दौड़ाना न शुरू कर दे।

चलिए, सहूलियत के लिए अब उस मुहल्ले को एक नाम दे देते हैं। तो उसका नाम है- नया नगर। उस नया नगर के लगभग बीचो बीच सजल चौधरी का तीस कमरों वाला तिमंजिला भव्य भवन अवस्थित है। तीस में से बीस कमरों से किराये के रूप में प्रतिमाह हजारों रुपये आते हैं। सजल चौधरी का समाज में नाम है, इज्जत है। उसका घर धन- ऐश्वर्य से परिपूर्ण और परिवार बड़ा पर खुशहाल है। उसी मकान में दूसरी मंजिल का एक कमरा मैंने लिया था। मेरे बगल वाले कमरे में गोपाल कुमार और उसका परिवार रहता था।

परिवार वाले अपरिवार वालों को यानी जिनका परिवार साथ नहीं रहता, स्वाभाविक रूप से सन्देह की नजर से देखते हैं। और इसी वजह से वे ऐसे लोगों से मेलजोल नहीं बढ़ाना चाहते।

एक सप्ताह बीत जाने पर भी गोपाल कुमार से मेरी कोई बात नहीं हुई थी। मेरी इच्छा होती बात करने की, पर वह सीधी नजर मेरी ओर देखता ही नहीं था। एक सुबह वह बरामदे में सोफे पर बैठकर अखबार पढ़ रहा था। दरवाजा खुला रहने के चलते मैंने सामने से अपना दरवाजा खोला तो हमारी नजरें टकरा गयीं। मैंने स्वाभाविक मुस्कान के साथ पूछा, 'क्या भाई साहब, कोई खास खबर है क्या?'

'नहीं, कोई खास नहीं। आइए।' उसने थोड़ा सकपकाकर जवाब दिया। सम्भवतः उसे अपनी गलती का एहसास हुआ कि उसने दरवाजा क्यों खुला छोड़ दिया था। मैं सहजता से उसकी तरफ बढ़ गया तो वह और असहज हो गया। शायद उसे दूसरी गलती का भान हुआ कि उसने मुझे आने को क्यों कहा। अब चला गया तो अनमना-सा उसने बैठने का आग्रह किया। उसने निर्लिप्त भाव से अखबार का एक पन्ना मेरी ओर बढ़ा दिया, 'लीजिए, देखिए।' हम दोनों चुपचाप अखबार के अक्षरों पर अपनी नजरें दौड़ाते रहे। तदुपरान्त वह पन्ना लौटाते हुए मैं बुदबुदाया, 'आजकल अखबारों में कुछ रहता ही नहीं।'

'हां, आप सही कहते हैं।' उसने अन्यमनस्क-सा मेरा समर्थन किया। स्पष्ट लग रहा था कि वह मुझसे बात करने के मूड में नहीं है। मेरी समझ में भी नहीं आ रहा था कि बात कहां से शुरू करूं। परन्तु मेरी यह दुविधा उसने ही समाप्त कर दी। उसने पूछा, 'आप कहां के रहने वाले हैं?'

'रांची का। और आप...?'

'क्या! सच! आप रांची के रहने वाले हैं? पहली बार उसके होठों पर मुस्कान खिली। वह अखबार एक किनारे रखते हुए आगे बोला, 'रांची का तो मैं भी हूं। आप किस जगह के हैं?' फिर हमने एक दूसरे को नाम, गांव, टोला सब बताया।

दूसरे शहर में अपने शहर का आदमी अपना-सा ही लगता है। अब गोपाल कुमार सहजतापूर्वक बातें करने लगा था। उसने अपनी पत्नी और बच्चों को बुलाकर उनसे मेरा परिचय कराया और फिर पत्नी से चाय लाने को कहा।

अब गोपाल कुमार से रोज सुबह-शाम बातें होने लगीं। शाम को प्रायः वही हमारे यहां आ जाता, क्योंकि उस वक्त मदन खाना बना रहा होता और मैं उसकी सहायता करता। लेकिन सुबह वह खुद मुझे ही बुला लेता, 'महेश्वर जी, अखबार नहीं देखना है? आ जाइए।' और मैं अवश-सा चला जाता।

एक दिन बातचीत के क्रम में मैंने उस पागल बुढ़िया की बात छेड़ दी। गोपाल कुमार

ने बताया, 'यह तो मैं भी नहीं जानता कि वह कौन है, वहां क्यों रहती है, कहां से आयी है; पर पिछले सात सालों से यानी जब से मैं इस मुहल्ले में आया हूं, वहीं देखता आ रहा हूं।'

'आपने कभी जानने का प्रयास किया?'

'नहीं, जानने का प्रयास तो नहीं किया। और महेश्वर जी, जानकर क्या कीजिएगा। दुनिया में कितनी तरह के लोग हैं, कितनी तरह से जीते हैं, कितना हिसाब रखिएगा और इससे क्या होगा? मैं और कुछ पूछना उचित न समझकर चुप हो गया।

करीब दो महीने गुजर गये। काम प्रगति पर था। सारे मजदूर पूरी मेहनत से काम पर जुटे हुए थे। बरसात शुरू होने के पहले यह कार्य पूरा करना था। आधा चैत बीत चुका था और गर्मी तेज होने लगी थी। कभी-कभी अंधड़ चलता तो धूल-मिट्टी चारों ओर उड़ने लगती। जब उड़ती तो नाक, कान, आंख, जहां भी जगह मिलती, घुस जाती। दोपहर बाद ऐसे ही एक अंधड़ का सामना करने के बाद सारे मजदूरों के साथ मैं भी अपनी आंखें मल रहा था कि झिरगा मांझी बोला, 'लगता है, मारंग बोंगा आ गया है।' मैं कुछ समझा नहीं। पूछा, 'मारंग बोंगा? कौन मारंग बोंगा?'

'आप नहीं जानिएगा, सर। ऊ हम लोग का देवता है। ऊ जब आता है तो अइसने आंधी-तूफान चलता है।' फिर कुछ रुककर उसने कहा, 'सर, कल से तीन दिन छुट्टी कर दीजिए।'

'छुट्टी! किसलिए?'

'सर, हमलोग को मारंग बोंगा का पूजा करना है।'

मैं एक दिन भी काम बन्द नहीं करना चाहता था। पर उस पूजा के प्रति जिज्ञासा हुई। अतः झिरगा से पूछा, 'कब है ये पूजा?'

'कल पानी रखना है, परसो पूजा होगा आउर उसका आगे दिन फूलखोंसी होगा, तब खतम होगा।'

मारंग बोंगा, पानी रखना, फूल खोंसना; मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

चैत्र शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को मारंग बोंगा की पूजा रखी गयी थी। जिज्ञासावश मदन शर्मा के साथ मैं भी उस पूजा की सारी गतिविधियों में साक्षी की भांति शामिल हुआ। झिरगा मांझी हमारे साथ था। वह बीच-बीच में हमें बताता जा रहा था कि यह क्या किया जा रहा है, क्या किया जाता है, क्यों किया जाता है इत्यादि।

जिस स्थल पर पूजा का आयोजन किया गया था, वह किसी भी रूप में देवालय जैसा नहीं लगता था। वहां आठ-दस बड़े और मोटे-मोटे सखुआ के पेड़ थे जो आम की मंजरियों जैसे छोटे-छोटे हल्के पीतवर्णी फूलों से लदे हुए थे, जिससे वातावरण में हल्की सुगंधित मादकता छायी हुई थी। पेड़ों पर आये नये पत्ते यौवनावस्था की ओर बढ़ रहे थे तथा फूलों पर छोटे-छोटे फल भी लगने शुरू हो गये थे। उन पेड़ों के बीच एक कदाचित अधिक पुराना पेड़ था। उसके चारों ओर की जमीन को साफ-सुथरा करके गोबर से लीप दिया गया था। उस पेड़ की एक तरफ एक पूर्वाभिमुख पत्थर गड़ा हुआ था। उसके सामने दो घड़े रखे हुए थे। उसी जगह एक आदमी नयी धोती पहने पूजा कर रहा था। उसके केवल होठ हिल रहे थे। किसी को ज्ञात नहीं था कि वह मारंग बोंगा से क्या बोल रहा था या मांग रहा था। चारों ओर उमड़ी भीड़ बड़े उत्साह और उत्सुकता से पूजा होते हुए देख रही थी।

झिरगा ने बताया, 'ई जघा को सरना कहते है, सर। हम लोग का मारंग बोंगा एहे सखुआ गाछ में रहता है। साल में एक बार इसको पूजने से ई पूरा गांव को दुख-मुसीबत से बचाता है। एही पानी बरसाता है आउर हम लोग का खेती-बारी, गरू-छगरी, मुरगी-चेंगना का देखभाल भी करता है। ई पूजा को लोग बाहा पूजा आउर कुछ लोग सरहुल पूजा भी कहता है। ऊ आदमी जो नवां धोती पींधकर पूजा कर रहा है, ऊ पाहन है। ओही हर बरस पूजा करता है और ओही बताता है कि ई साल बरखा-पानी कइसन होगा, बाढ़ आएगा कि अकाल पड़ेगा।'

सरहुल पूजा के बारे में मैंने सुना जरूर था, पर करीब से देखने का यह प्रथम अवसर था। मैंने झिरगा से पूछा, 'यह पाहन बारिश या सूखे के बारे में कैसे जानता है?' इस पर उसने उस पेड़ के नीचे दो घड़ों की ओर इशारा करते हुए बताया, 'ऊ दूनों गगरी है न, ऊ दूनों में एक दिन पहले सांझ को तीन-चार जन के साथ पानी भरकर पेड़ के पास रख देता है। फिर बिहान को पाहन के साथ कुछ खास-खास आदमी लोग देखता है। अगर गगरी का पानी नीचे चला जाता है तो इसका मतलब ई साल बरखा कम होगा, आउर अगर पानी का असतर ऊपर चला जाता है चाहे भरकर बाहर छलक जाता है तो इसका माने ई बछर भरपूर बरखा होगा।' मैंने पूछना चाहा कि क्या पाहन की भविष्यवाणी सत्य होती है, पर कुछ सोचकर चुप ही रहा।

पूजा के उपरान्त सभी लोग बारी-बारी से पाहन के हाथों सखुआ का फूल ग्रहण करने लगे। पाहन, पुरुषों के दाएं कान पर फूलों को खोंस देता था और औरतें बड़ी श्रद्धा से उन्हें आंचल में ग्रहण करके अपनी जुड़ाओं में लगा लेती थीं। इसके बाद प्रसाद वितरण हुआ और तत्पश्चात सामूहिक नाच-गान का कार्यक्रम चलने लगा। युवक-युवतियां पंक्तिबद्ध होकर एक दूसरे के हाथ पकड़ उल्लसित मन से मांदर की थाप के साथ एक निश्चित लय-ताल के साथ थिरकने लगे। बाकी लोग चारों ओर खड़े-बैठे नृत्य-गान का आनन्द ले रहे थे। मस्ती के आलम में लोग दुनिया की सारी पीड़ाएं और चिन्ताएं भूलकर इस कदर आनन्द

के सागर में डूब गये कि उन्हें पता ही नहीं चला कि रात के नौ बज चुके हैं। मदन शर्मा की अन्यमनस्कता देख मैंने उसे पहले ही जाने की इजाजत दे दी थी।

मैंने झिरगा से जानना चाहा, 'यह नाच-गान कब तक चलेगा?'

'अभी चलेगा, सर। आप जाइएगा का?' फिर कुछ सोचते हुए कहा, 'रात हो गया है, सर। अइसा करिए, आज आप एहीं ठहर जाइए।' इसके बाद वह मुझे अपने घर ले गया। मुझे आंगन में एक खाट पर बैठने का आग्रह किया और स्वयं अन्दर चला गया। उसकी पत्नी झुनरी कुछ देर पहले ही सरना से आ चुकी थी। दोनों में दबी जुबान में कुछ बातें होने लगीं। फिर झिरगा का स्वर सुनाई दिया, 'दुर पगली, डरती काहे है, हम हैं न। अइसा करो, जल्दी से रींधना कर लो। थोड़ा बढ़िया से बनाना। मगर रुको, पूछ लेते हैं।' फिर बाहर आकर उसने कुछ संकोच के साथ मुझसे पूछा, 'सर, आ... आप हम लोग का रींधा भात खाइएगा कि अपने से रींधिएगा?'

'मतलब?'

'हमलोग छोटा आदमी हैं, सर। दिकू लोग हम लोगा का रींधा-पकाया नहीं खाता है।'

मेरी इच्छा सचमुच कुछ खाने की नहीं हो रही थी। लेकिन झिरगा ने ऐसा सवाल खड़ा कर दिया था कि विवश होकर मुझे कहना पड़ा, 'मेरे साथ ऐसी कोई बात नहीं है। मैं तुम लोगों का पकाया खा लूंगा।'

उसके चेहरे पर ऐसी चमक आ गयी मानो वह बड़ा हो गया हो, उसकी इज्जत बढ़ गयी हो, तथाकथित दिकुओं के बराबर हो गया हो।

झुनरी खाना पकाने में व्यस्त हो गयी और हम बातचीत में। झिरगा ने मुस्कुराहट और संकोच के मिले-जुले भाव के साथ पूछा, 'सर, हंड़िया पीजिएगा?'

'हंड़िया! नहीं जी, मैं नहीं पीता।'

'अरे थोड़ा-सा पी लीजिए सर, कुछ नहीं होगा। सहरी लोग तो एंगरेजी दारू पीता है। ऊ तो एहां मिलेगा नहीं। हम लोग के लिए एही...। संकोच मत करिए सर, चावल का होता है, कोनो अइसा-ओइसा चीज मिलाया हुआ नहीं होता है।'

भोजनोपरान्त मुझे खाट पर लेटने को कहा और वह उसी जगह जमीन पर चटाई बिछाकर लेट गया। काफी रात तक बातचीत होती रही। मैंने उससे पूछा कि उसके परिवार में कौन-कौन हैं तो उसने बताया, 'हमरा मेहरारू और दू गो छोटा-छोटा बच्चा है।'

'तुम्हारे माता-पिता?'

'नहीं हैं, सर। मां तो कबे मर गयी जब हम छोटा थे। आउर बाप भी पीछे बरस गुजर गया। हमरा बाप बड़ा दुख में जिनगी गुजारा, सर। मां के मरने के बाद बहुत एकला हो गया था। घर में हमरा एक ठो बहिन थी आउर हम। हम लोग छोटा-छोटा थे। घर में गरू-छगरी था। थोड़ा-मोड़ा खेत-बारी भी था, मगर काम करने वाला कोई नहीं था। गांव का सब लोग बाप से कहता रहा कि दूसरा बिहाकर लो, मगर ऊ नहीं माना। ओही समय सजल चोधरी गांव में आया धांगर खोजने। ऊ हमरा बाप को कुछ रुपइया देकर हमको ले गया।'

कौन सजल चौधरी? वह नया नगर वाला?'

'हां सर, ओही। ऊ बहुत बड़का हरामी आदमी है। ऊ दिन-रात गरू-काड़ा जइसा हमसे काम करवाता था और थोड़ा-सा कुछ गड़बड़ा जाने से हमको लतियाने लगता था। मेरा मन भाग जाने को करता था। हम अपने बाप को भी बताया था, मगर ऊ बोले कि सबर करो बेटा, हम लोग छोटा आदमी हैं। दिकू लोग तो हमलोग को मारते-पीटते रहबे करता है। कभी-कभी मारता है तो का हुआ, खाना तो देता है। जब हम कहते कि ऊ हमको बासी आउर बच्चा लोग का जूठा भात देता है, तो मेरा बाप कहता कि जो भी हो, कम से कम पूरा खाना तो मिल जाता है.... आउर हम ओहीं रहकर, गारी सुनकर, लात-मुक्का खाकर, जूठा-बासी भात पेट में डालकर थोड़ा बड़ा हुए। हम हमको दिकू लोग का बात थोड़ा-थोड़ा समझ में आने लगा था। एक दिन सजल चोधरी.....।'

'झिरगा!' मैंने उसे बीच में ही टोका, 'इस दिकू के बारे में तुमने आज तक बताया नहीं। यह क्या होता है?'

'दिकू ऊ लोग को कहता है जो दूसरा देस से आया है।

'दूसरे देश से?' मैंने आश्चर्य व्यक्त किया। उसने बताया, 'हां सर। हमलोग का आजा-दादा लोग बताता था कि बहुत पहले ई पूरा देस हम लोग का था। बोन-पतरा, जंगल-झाड़, नदी-नाला, घास-पोरा, साग-पात, अम्बा-जामुन, नीम-कठर, जघा-जमीन सब हमलोग का था। ई दिकू लोग एहां आते गया आउर हम लोग का जघा-हमीन, जंगड़-झाड़ सब हथियाते गया। ऊ जो नया नगर है न सर, ऊ पूरा हमलोग का था। हमलोग का पुरखा लोग ओहीं रहता था। सब लोग का खपरा-माटी का घर था आउर सब तरफ खूब खेती-बारी होता था। मगर ऊ दिकू लोग हमलोग को धीरे-धीरे भगाते गया आउर हम लोग जंगल के तरफ आते गये। ऊ समय इधर पूरा घनघोर जंगल था। हम लोग जंगल साफ करके फिर से घर बनाये आउर खेत बनाकर खेती करने लगे।'

मैंने पूछा, 'तुम लोगों ने विरोध नहीं किया?'

'कौन विरोध करता सर? ऊ लोग बहुत चालाक होता है। आदिवासी लोग तो एगदमे

गरू होता है। बाहर-भीतर का बात समझबे नहीं करता है। ऊ दिकू लोग सब आदिवासी लोग को दू-चार पइसा दे के आउर दारू पिला के सब जमीन लिखवा लिया, ठेपा लगवा लिया। जो नहीं देने खोजता था उसका से भी डरा-धमका के ठेपा लगवा लिया। ऊ लोग गोली-बन्दूक रखता है। हमलोग का तीर-ध नुक केतना काम करता। सो सब आदिवासी लोग भाग गया।

'दिकू लोग का विरोध करने के लिए मुण्डा लोग के घर में एक भगवानो आया था, मगर लाल दिकू लोग उसको मार दिया।'

मेरा माथा चकरा रहा था। अब यह लाल दिकू कौन है! मेरे पूछने पर बताया, 'हम लोग का पुरखा लोग बताता था कि ऊ दिकू लोग एतना गोर होता था कि लाल-लाल दिखता था। ओही लोग मुण्डा लोग के भगवान को मारा था आउर झूठ-मूठ के बात फैला दिया कि हैजा होने से ऊ मर गया।

'बाद में पता चला कि गांधी महात्मा ऊ लाल दिकू लोग को सात समुन्दर पार भगा दिया। मगर बाकी दिकू लोग एहीं रह गया।'

झिरगा मांझी लगातार बोले जा रहा था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मुझे भी दिकू समझने वाला यह झिरगा इतनी बातें कैसे बता रहा है। गत दो महीनों के साथ ने मुझ पर उसका विश्वास बढ़ा दिया था या हंड़िया के सुरूर का असर था, निर्णायक रूप से नहीं कहा जा सकता। लेकिन हंड़िया के असर की सम्भावना ज्यादा थी, क्योंकि जब आदमी नशे की गिरफ्त में आ जाता है तो उसे समय, स्थान, परिस्थिति इत्यादि का भान नहीं रहता। वह निरन्तर बोलता चला जाता है और प्रायः सच बात ही बोलता है।

उसने बात जारी रखी, 'ई दिकू लोग हमलोग पर बहुत अत्याचार किया सर। जघा-जमीन तो लेइए लिया, हम लोग के बहिन-बेटी को भी नहीं छोड़ा। जिसको चाहा, जब चाहा, इज्जत ले लिया। रोने-चिल्लाने, गिड़गिड़ाने का ऊ लोग पर कोई असर नहीं पड़ता था।

'सुन्दरी मंझियाइन का जिनगी कोन बिगाड़ा, दिकुए लोग न। जानते हैं, सजल चोधरी को नया नगर में कोन बसाया? भेलवा मांझी का आजा। ऊ बेरा उसका पास खाने तक का कुछ नहीं था। महीना भर तो ओही लोग खिलाया-पिलाया। उसके बाद ऊ एक ठो चौंकी डिसाकर तेल-नोल बेचने लगा। फिर भेलवा मांझी का आजा उसको रहने के लिए घर दे दिया। इसके बाद धीरे-धीरे ऊ अपना देस से आउर दिकू लोग को एहां बुला लिया। ओही हरामजादा सजल चोधरी सुन्दरी को ऐसा नोच खाया कि बेचारी अधपगली हो गयी।'

'अधपगली' शब्द ने मेरी आंखों के सामने भेड़ा पुल के पास वाली उस पगली बुढ़िया की तस्वीर खड़ी कर दी। मैंने झट से पूछा, 'यह सुन्दरी कौन है झिरगा? और वह कहां रहती है?'

'सर, उसका कहानी बहुत दरदनाक है। सुनकर रोने का मन करता है। ऊ भेलवा मांझी का औरत है। लोग कहता है कि जब ऊ जनमी थी तो बहुत सुन्दर थी, इसीलिए उसका नाम सुन्दरी रखा था। जइसे-जइसे जवान होने लगी, आउर जादे सुन्दर दिखने लगी। भेलवा मांझी से बिहा होने के बाद अभी उसका हरदी का रंग उतरा भी नहीं था कि दिकू लोग उसका सब कुछ उतार दिया। उसका सपना, अरमान और जीने का मकसद सब कुछ छीन लिया। जानते हैं सर, ऊ लोग कोन था?'

'कौन थे?'

'सजल चोधरी आउर उसका साथी लोग।'

'क्या?' मेरे दिमाग के तार झनझना उठे। उसने कहा, 'हां सर, ओही लोग था। भेलवा मांझी का कमजोरी था कि ऊ दारू बहुत पीता था। जब पीकर सोता था तो सुतले मूत देता था। ई कमजोरी का फायदा उठाकर ऊ लोग एक दिन उसको अपना घर बुलाकर खूब दारू पिलाया। दारू बनाना तो ऊ लोग को आता नहीं था, इसलिए आदिवासिए लोग से लेकर आदिवासिए लोग को पिलाकर ठगता था।

'बिहान भेड़ा पुल के पास, जो ऊ समय नहीं बना था, भेलवा मांझी मरा हुआ मिला। उसका आसपास उल्टी किया हुआ था और उसका शरीर भी उसी में सना हुआ था। उसका मुंह-नाक से फेन निकलकर सूख गया था।

'बात फैलतेहे सब लोग जमा हो गया। उसको उठाया और उसका घर लाया। घर का दूरा बन्द था। आदमी लोग सुन्दरी को बहुत हंकाया, मगर ऊ दूरा नहीं खोली। सब लोग को अचम्भा हो रहा था कि मुंह अन्धेरे उठकर काम पर लग जाने वाला सुन्दरी आज अभी तक उठी काहे नहीं है। आखिर में दूरा को थोड़ा ढकेला गया तो ऊ भड़ाक से खुल गया। सब लोग हक्का-बक्का रह गया। सुन्दरी का बिल्कुल लंगा गतर जमीन पर बेसुध पड़ा था। पापी सजल चोधरी आउर उसका साथी लोग रातभर हुंडार जइसा सुन्दरी के गतर को नोच-नोचकर लहुआ-लाखर कर दिया था। औरत लोग पहले उसका गतर पर कपड़ा ढाप दिया आउर उसके बाद कय बार उसके चेहरा पर पानी का छींटा मारने पर सुन्दरी को होस आया। ऊ एतना डरी हुई थी कि आदमी लोग को देखकर कपड़ा से मुंह ढापकर सिकुड़कर बैठ गयी। उसका गतर थरथराकर कांप रहा था।

'उसको एक तरह से सचमुच का होस तब आया जब उसको बताया गया कि उसका मरद मर गया। ऊ 'का' करते हुए झट से उठी आउर बदहवास-सी दौड़कर बाहर निकल गयी। ऊ अपने मरद के गतर को होबराकर पकड़ ली आउर एतना जोर-जोर कान्दने लगी कि पूरा नया नगर में, जो ऊ समय गुंदली बेड़ा नाम का गांव था, हाहाकार मच गया।

कान्दते-कान्दते ऊ फिर बेहोस हो गयी। तभी से उसका हालत अइसा हो गया है। ऊ समय सुरूज निकलने का बेरा था। उसके दिमाग पर अइसा असर पड़ा कि बिना नागा किये रोज बेरउगती टेम में पगली जइसा खूब गारी बकती है।

'ऊ घटना के बाद उसका भाई अपने साथ ले जाने के लिए आया था, मगर ऊ जाने के लिए राजी नहीं हुई। उसका कहना था, अपना मरद का घर छोड़कर कहीं नहीं जाएगी। काड़ा बिना हर आउर मरद बिना घर का कोई भरोसा नहीं रहता। मरम्मत के अभाव में उसका घर धंसता चला गया आउर एक दिन माटी में मिल गया। जिसमें ऊ रहती है, उसको हम्हीं लोग का कोई आदमी सुअर रखने के लिए बनाया था। बाद में ओही उसका डेरा हो गया।'

इतना बताने के बाद झिरगा खामोश हो गया। चांद कब का डूब जाने के कारण सर्वत्र घना अन्धेरा पसरा था। चारों ओर भयानक सन्नाटा। कहीं उथल-पुथल मची थी तो मेरे अन्तर्मन में। कुछ क्षण उपरान्त सन्नाटे को तोड़ते हुए मैंने पूछा, 'वह तो तुम लोगों के समाज की ही है। उसकी मरद क्यों नहीं करते? उसे अपने साथ गांव में क्यों नहीं रखते?'

'का बताएं सर। ऊ नया नगर छोड़ने नहीं चाहती है। कहती है, जब तक सजल चोधरी मरेगा नहीं, तब तक कहीं नहीं जाएगी। दूसरा बात है कि बिना काम-धाम के कोन केतना दिन पोसेगा? एहां तो अपना आउर अपने छौए-पुता का पेट पालना मसकिल होता है। कुछ रुककर वह बोला, 'जानते हैं, एहां जो सड़क बन रहा है, उसका बारे में लोग का बोलता है? कहता है कि कचिया सड़क बनता तो अच्छा रहता।'

'क्यों? ऐसा क्यों बोलते हैं?'

'काहे कि कचिया सड़क बनता तो बरसात में बह जाता। तब फिर बनता आउर आदमी लोग को फिर से काम मिलता।'

'तो क्या गांव वाले कुछ नहीं करते? अपनी जीविका कैसे चलाते हैं?'

'का करेगा सर! खेती-बारी करता है आउर बाकी दिन में दतुन-पतई बेचता है या अइसे ही खाली पड़ा रहता है। ऊ झरझरी गढ़ा है न, बरसात में भर जाता है तो बाजार जाने का रास्ता भी बन्द हो जाता है। ऊ समय तेल-नोन खरीदना भी मसकिल हो जाता है।'

'यहां सरकारी राशन नहीं मिलता है?

'नहीं सर। एतना दूर कोन सरकारी राशन देने आएगा?'

कुछ क्षण रुककर मैंने पूछा, 'जब तुम लोगों का जीवन गुजारना इतना मुश्किल है तो वह सुन्दरी क्या खाती है? जीवित कैसे रहती है? कौन खिलाता है उसे?'

'का खाएगी सर! जब जादे भूख सताने लगता है तो किसी का दूरा के पास जाकर चुपचाप बैठ जाती है। न गारी-गुपता करती है, न किसी से कुछ कहती है। उसका ई आदत को आसपास का सब आदमी जानता है। एहे चलते जिसका दूरा पर जाती है, कुछ न कुछ मिल जाता है। उसको खाकर फिर चुपचाप ओही झोपड़िया में आ जाती है। मगर सर, ऊ सजल चोधरी का दूरा पर कभी नहीं जाती है। एक बार आउर सुनिएगा सर, ऊ बेमार कहियो नहीं पड़ती है। लगता है, मारंग बोंगा उसको सब रोग-दोष से बचाता है।'

'और तुम लोग बीमार पड़ने पर कहां इलाज कराते हो? यहां कोई स्वास्थ्य केन्द्र है या कोई डॉक्टर यहां आता है?

'डागहर एहां कहां मिलेगा सर! गांव में दू-तीन ठो कमरू (ओझा) है। ओही लोग झाड़-फूंक के ठीक कर देता है।'

अपनी आदत के विपरीत उस दिन मैं सूर्योदय के बाद ही जाग पाया, वह भी झिरगा के जगाने पर। विचारों के गहन अन्धकार में न जाने कब तक पड़ा डूबता-उतराता रहा था। पूरी दुनिया रात के अन्धकार में डूबी हुई थी, परन्तु मेरे मन का अन्धकार, विचारों का अन्धकार कदाचित अधिक घना था।

कालू मांझी, मुकुन्द मांझी, बोड़ेया मांझी और बोदरा मांझी, झिरगा मांझी के आंगन में बैठे हंड़िया पी रहे थे। कटोरी को अपने होठों से लगाते हुए कालू मांझी ने कहा, 'चलिए, जल्दी करिए मरदे, नहीं तो पाहन खिसाएगा। बहाखोसनी जल्दी शुरू नहीं होगा तो पीछे बछर जइसा रात हो जाएगा।' बाकी सभी हामी भरते हुए गटागट हंड़िया पीने लगे।

उस वक्त मेरा कोई काम था नहीं। अतएव मेरी नजरें यों ही भटकने लगीं। झिरगा के घर का मुआयना करने लगा-छप्पर और दीवारें जर्जर हो गयी थीं। लगता था, आंधी का एक झोंका भी वह छप्पर बर्दाश्त नहीं कर पाएगा। बांस के बुने टटरे का छोटा-सा दरवाजा। आदमी झुककर न घुसे तो द्वार के ऊपर सिर का टकराना निश्चित।

मैंने जानना चाहा, 'यहां इन्दिरा आवास किसी को मिला है?' सभी एक दूसरे को अबूझ नजरों से देखने लगे। इसके बाद झिरगा ने पूछा, 'ई का होता है सर?' मैं कुछ बताता इसके पहले झिरगा ने झुनरी को हिदायत दी, 'अरे, पानी लेकर जल्दी आना, फूलखोसी करने जाना है।' वह बिना कुछ जवाब दिये चली गयी। मेरी नजरें कुछ पल झुनरी का पीछा करती रहीं। वह अपनी पीठ पर एक-डेढ़ साल के बच्चे को गमछे से बांधे, दोनों हाथों में एक-एक डेगची पकड़े तेजी से चली जा रही थी।

मैंने गौर किया कि सामने डेगची में जो पानी रखा हुआ था, एकदम गदला था। तो

क्या रात में यही पानी और इसी पानी से बनायी हंड़िया मुझ भी पिलायी गयी? अवश्य ही यही पानी रहा होगा। परन्तु मेरी जिहृवा को क्या हो गया था? उसने मुझे क्यों नहीं बताया कि यह गदला पानी है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है? तो क्या उस एक कटोरी हंड़िया का प्रभाव था कि सारी इन्द्रियां जड़वत हो गयीं? हो सकता है, क्योंकि उस एक कटोरी हंड़िया का नशा गजब का था जिसने मुझे पूरी तरह अपने गिरफ्त में ले लिया था।

मैंने उन लोगों से पूछा, 'तुम लोग कहां का पानी पीते हो?'

'जामुन डोभा का।'

'जामुन डोभा?'

'हां सर।' झिरगा ने बताया, 'ई गांव में ओही एक ठो डोभा है जो कहियो नहीं सूखता है। आजकल रउदारी में पानी घट जाता है, मगर सूखता नहीं। सारा गांव ओहीं से पानी पीता है।'

'ऊ डोभा जामुन गाछ का जड़ के पास है।' कालू मांझी बोला। तत्पश्चात मुकुन्द मांझी बोला, 'आउर पता है साहेब? जामुन गाछ के पासवाला पानी बहुत मीठा होता है। जब डोभा भरल रहता है तो पानी एतना साफ दिसता है कि एक ठो सुई भी गिरा रहने से दिख जाएगा। आजकल पानी कम हो जाने से थोड़ा हिंड़कोड़ा जाता है। एहे चलते तनी खिदोर दिसता है।'

अब हंड़िया समाप्त हो गया था। बोड़ेया मांझी तम्बाकू अपनी हथेली पर मलने लगा। मैंने कहीं सुना या पढ़ा था कि मनुष्य का भाग्य अपने हाथ में होता है। यह भी सुना था कि आदमी की भाग्य रेखा उसकी हथेली में होती है जो समय-समय पर बदलती रहती है। पता नहीं, इन लोगों की हथेली में कैसी भाग्य रेखा होती है जो सदा एक-सी रहती है। पीढ़ियां गुजर जाती हैं, किन्तु रेखाएं बदलने का नाम नहीं लेतीं। क्या इनका भाग्य इनके हाथों में नहीं है? अगर है तो ये अपना भाग्य संवारते क्यों नहीं?

फिर अचानक ख्याल आया कि आज तो उठकर पानी पिया ही नहीं। सोचा, अब भी पी लूं, परन्तु गदले पानी को देखकर पीने की इच्छा एक तरह से मर गयी। कुछ क्षण रुककर मैंने पूछा, 'इस गांव में चापाकल नहीं है?' झिरगा ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, 'एहां चापाकल कहां रहेगा, सर ! किसके पास ओतना पइसा है जो चापाकल गड़ावेगा।'

'अरे भाई, सरकार की ओर से गांव-गांव में चापाकल लगवाया जाता है। यहां नहीं लगाया गया है?'

'पता नहीं सर, एहां तो नहीं लगाया है। हमलोग का तो जामुन डोभा जिन्दाबाद है।' इसके साथ ही सभी हंसने लगे।

तमाम अभावों और दीनता के बावजूद उनकी सहज जिन्दगी जीने की अदा मेरी समझ से परे थी। उनके चेहरे तनावों से उस तरह ग्रस्त नहीं लगते जैसे शहरियों के लगते हैं। कल से तो इनकी खुशी का ठिकाना नहीं है मानो तथाकथित मारंग बोंगा ने खुशियों की बारिश कर दी हो।

मुझे सुन्दरी का ख्याल आया। क्या वह इस महोत्सव में भी शामिल नहीं होती? क्या वह खुश रहना बिल्कुल भूल गयी है? क्या मारंग बोंगा की कृपा उस पर नहीं बरसती? क्या गांव वाले कम से कम इस अवसर पर भी उसे नहीं बुलाते, या वह आना ही नहीं चाहती? न चाहते हुए भी मैंने झिरगा से पूछ ही लिया। सुन्दरी का प्रसंग आते ही उनकी खुशियों में खलल पड़ गया। मारंग बोंगा मानो नाराज हो गये।

झिरगा बोला, 'सर, हम आपको पहले ही बताये थे कि सजल चोधरी के जिन्दा रहने तक ऊ ओहां से कहीं जाना ही नहीं चाहती है।'

'ऊ एक लम्बर का पापी है साहेब।' कालू मांझी ने कहा, 'देखिएगा, जब मरेगा तो उसके मुंह में पिल्लू पडेगा। हम लोग का जघा-जमीन, इज्जत-पानी लूटकर जो पाप किया है, ऊ तो एक दिन फूटबे करेगा।' मैंने पूछा, 'सरकार तो आदिवासियों की जमीन वापस करवा दे रही है। तुम लोगों को इसकी खबर है?'

'कुछ आपस नहीं होगा सर। सब कागजी बात है। आज तक किसी को जमीन आपस मिला कि नहीं, ई तो नहीं पता, मगर हमरा गांव में तो किसी को नहीं मिला।'

'तुम लोगों ने अपनी जमीन वापस लेने की कोशिश की? ब्लॉक से पता लगाया था?' मुकुन्द मांझी बोला, 'कुछ नहीं होगा साहेब। हमलोग को भी कागज मिला था। उसको लेकर दस-पन्द्रह आदमी सजल चोधरी के पास गये थे।'

'हां सर।' झिरगा ने कहा, 'सहज चोधरी जमीन छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ। हम लोग सोचते थे कि सजल चोधरी हम लोग को जमीन दे देगा तो बाकी लोग भी दे देगा। इसलिए पहले उसी के पास गये थे। मगर ऊ हम लोग को डरा-धमका के भगा दिया। बोला कि सरकार कागज दिया है तो सरकारे से जमीन मांगो। ऊबड़-खाबड़ जमीन को हम ठीक कराये, इसमें घर बनाये, कुआं कोड़वाये, चापाकल लगवाये। ई सब में केतना पइसा लगा है, मालूम है? ऊ सब तुम लोग का बाप का पइसा था? चलो, अब तुम सब फूटो। नहीं तो सबको गोली मार देंगे।

'बाद में एक दिन ई बात को लेकर बहुत हंगामा हुआ। ढौंठा टुंगरी और बोनपतरा के सब आदिवासी जनी-मरद, बाल-बच्चा मिलकर नया नगर खाली करवाने गये थे। सजल चोधरी को सायद इसका पता चल गया था।

ऊ अपना देस से दस-बीस गो मूड़कटवा गुण्डा मंगा लिया था। फिर सहर से पूरा थाना-पुलिस आ गया।' झिरगा खामोश हो गया। मैंने पूछा, 'आगे क्या हुआ?'

'का होना था साहेब !' मुकुन्द मांझी बोला, 'समझौता हुआ। पुलिस बोला कि सरकार का अगला आदेस आने तक कोई हंगामा नहीं करेगा।' कुछ रुककर उसने मुझसे पूछा, 'अच्छा साहेब, ई सरकार कहां रहता है?' उसके नादान प्रश्न पर मुझे हंसी आ गयी। मैंने बताया, 'सरकार कोई आदमी नहीं होता है। यह एक तन्त्र होता है जिसे मन्त्री लोग मिलकर बनाते हैं।'

'आउर ऊ मन्तरी लोग कहां रहता है?' यह बोड़ेया मांझी का सवाल था।

आधा ज्येष्ठ अभी बाकी था। चारों ओर चिलचिलाती धूप। लू लगने का खतरा। परन्तु इस खतरे से अनजान सारे मजदूर-मजदूरनियां काम पर जुटे हुए थे। मैं भी चाहता था कि काम जल्दी से जल्दी समाप्त हो जाए। बरसात शुरू होने के पहले यदि काम समाप्त न हुआ तो सारा गुड़ गोबर हो जाएगा। हमारी कम्पनी को पेमेंट भी नहीं मिल पाएगा और उसकी जिम्मेदारी मुझ पर ही आएगी। यही चिन्ता मुझे सता रही थी।

आसाढ़ शुरू हो गया था। आसमान में जलकणों से लदे काले-काले बादल मंडराने लगे थे। पर अभी बूंदें पड़नी शुरू नहीं हुई थीं। सम्भवतः मानसून ने देर लगा दी थी। सुन्दरी अपनी कुटिया के दरवाजे के पास निर्लिप्त भाव से निःशब्द बैठी हुई थी। दिन के नौ बज रहे थे। वह शायद गाली देने के नित्य के काम से छुटकारा पा सुस्ता रही थी। चार-पांच आदमियों के साथ मुझे देखते ही वह हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई और चीख उठी, 'अब का लेने आया है रे? सब तो ले लिया। फिर से लेगा का, लुगा खोल दें? आ...आ... खोल देते हैं। ले लो, जेतना लेने का मन....।' वह गन्दी, फटी साड़ी खोलने लगी। मेरे मुंह से अचानक निकला, 'मां जी, मां जी ! रुक जाइए।'

वह हक्की-बक्की होकर मेरा मुंह ताकने लगी। मैंने कहा, 'मां जी, हम आपसे कुछ लेने नहीं आये है। मुझे पता है, आप सब कुछ खो चुकी हैं। आपने जो खोया है, उसे हम लौटा भी नहीं सकते। हम तो बस, थोड़ी-सी आपकी सेवा करना चाहते हैं।' वह अब भी टकटकी लगाये निर्विकार भाव से मुझे निहारे जा रही थी, बिल्कुल अपलक। मैंने आगे कहा, 'मां जी, बरसात आने वाली है। हम चाहते हैं कि आपको थोड़ी-सी राहत पहुंचे। हम आपकी झोपड़ी, माने घर की थोड़ी मरम्मत करवा देना चाहते हैं, अगर आप इजाजत दें तो।'

वह एकदम से मुझसे लिपट गयी और फूट-फूटकर रोने लगी। झिरगा ने बताया था कि उसके पति के देहान्त के समय जो रोयी थी, उसके बाद उसे कभी रोते हुए नहीं देखा गया मानो उसके आंसुओं का पोखरा सूख गया हो। परन्तु इस समय पता नहीं, दिल के किस कोने का बांध टूट गया था और आंसुओं की धारा हरहराकर बहने लगी थी, सागर में ज्वार आ गया था। उस सागर में जो वर्षों से अपनी हलचल भूल चुका था। मैंने छोटे बच्चे की तरह मेरी छाती से कसकर चिपकी सुन्दरी की पीठ पर थपकी देते हुए एक तरह से जबरदस्ती अलग किया और साथ में लाये चारपाई पर आहिस्ता से बिठा दिया। रोते-रोते उसने मुझसे शिकायती लहजे में पूछा, 'तुम एतना साल से कहां था रे? एतना देरी से हमरा खेयाल आया?'

अब तक ट्रक से सामान उतर चुका था। मजदूर झोपड़ी को घर की शक्ल देने में लग गये। मैं चारपाई पर सुन्दरी के बगल में बैठ गया। उसने मरियल-सी धीमी आवाज में बतियाना शुरू किया, 'अब जीने का मन नहीं करता है बाबू। मगर परान निकलबे नहीं करता है। का जाने, भगवान कहिया हमरा परान लेगा।'

उसकी बातों से कहीं से नहीं लग रहा था कि वह पागल है। बिल्कुल स्वस्थ और सामान्य आदमी की तरह बात कर रही थी। अगले ही पल उसने मेरे दोनों हाथों को अपनी हथेलियों में लेते हुए कहा, 'तुम हमको ई काया से मुक्ति दिला दो रे। तुम्हीं हमरा परान छोड़ा सकता है।'

'मां जी, आप कैसी बातें कर रही हैं?'

'हां बेटा। तुम्हीं हमको मुक्ति दे सकता है। तुम सजल चोधरी को मार दो। उसका मरने पर हमरा परान आराम से छूट जाएगा। उसका साथी लोग तो टिडुआ गया, मगर ऊ अभी तक जिन्दा है। आउर जब तक ऊ नहीं मरेगा, हम नहीं मरेंगे।'

पूस मास की कनकनी जोरों पर थी। आये दिन अखबारों और खबरिया चैनलों पर समाचार आने लगे थे कि अमुक जगह ठण्ड से इतने लोग मरे। राजनीतिज्ञों के वोट बटोरने का एक नायाब अवसर। ये यत्र-तत्र गरीबों के बीच कम्बल बांटने का पावन कर्तव्य निभाने लगे। स्वार्थ-पूर्ति का एक सनातन और घिनौना तरीका। वे नहीं चाहते कि गरीब, किसान, मजदूर इस लायक हों कि वे खुद अपना कम्बल खरीद सकें, ताकि उनकी राजनीतिक फसल लहलहाती रहे। ऐसे में मुझे सुन्दरी की याद आयी। सड़क-निर्माण-कार्य पूर्ण होने के पश्चात मुझे जिला मुख्यालय स्थित केन्द्रीय कार्यालय बुला लिया गया था। तब से उसके बारे में कुछ भी नहीं जान पाया था। अपनी स्मृति-दोष पर खीझ हुई। नया नगर छोड़ने के पहले मुझे इस जाड़े का ख्याल क्यों नहीं आया? मेरा मन कार्यालय के कार्यों में नहीं लगने लगा। हर वक्त लगता जैसे सुन्दरी उलाहना दे रही हो, 'का रे, तुम फिर से भूल गया? एक बार भी खेयाल नहीं आता कि तुम्हारा मां जाड़ में कइसे रहती होगी?'

उसके घर के बाहर लोगों की भीड़ लगी हुई थी। मुझे आश्चर्य हुआ- जिसके दरवाजे की तरफ कोई आंख उठाकर देखता तक नहीं था, उसके दरवाजे पर भीड़! उस भीड़ में नया नगर के तथाकथित अन्य दिकुओं के साथ सजल चोधरी भी शामिल था। मैंने अपनी बाईक किनारे खड़ी की और भीड़ से पूछा, 'क्या हुआ भाई?' लोगों की नजरें मेरी ओर घूम गयीं। सजल चोधरी बोला, 'अरे, महेश्वर बाबू, आप?'

'हां चाचा जी। यह कैसी भीड़ है?'

'ये बेचारी पगलिया मर गयी, महेश्वर बाबू।'

'क्या? कैसे? कब?'

'लगता है, ठण्ड लग गयी।'

मैं तेजी से अन्दर घुसा। चारपाई पर पड़ा उसका मृतवत् शरीर अकड़ गया था। मैंने कुछ लोगों की सहायता से उसे चारपाई सहित बाहर निकाला। मेरा पूरा वजूद झनझना उठा। मेरा अपना ही अस्तित्व मिटता-सा लगने लगा। मेरे नेत्रों से आंसू बाहर आने को बेताब हो रहे थे जिन्हें बलपूर्वक दबाने की असफल चेष्टा कर रहा था। मुझे लगा, वह धिक्कार रही है- अभी आया है, रे ! अभी खेयाल आया! अब ई कमरा का का करेगा? हमको ओढ़ाएगा? मरी हुई मां को?

मेरी बुद्धि काबू में नहीं थी। हर दृष्टि से अपने को असहाय पा रहा था। कुछ समझ नहीं पा रहा था कि क्या करना चाहिए। वशीभूत-सा बाईक के कैरियर से बन्धा कम्बल लाकर सुन्दरी की देह पर ओढ़ा दिया और फफककर रो पड़ा। भीड़ मेरे क्रन्दन पर विस्मित थी। गोपाल कुमार ने कहा, 'छोड़िए महेश्वर जी, इस पगली बुढ़िया के लिए आप क्यों रो रहे हैं?' दूसरे ने कहा, 'सबको एक दिन तो जाना ही है। और ये कोई आपकी रिश्तेदार तो थी नहीं।' मुझे लगा कि चिल्ला-चिल्लाकर कहूं- नहीं...। वह मेरी मां थी। तुम सब की मां थी। पूरे मुहल्ले की मां थी। कुछ पागल कुत्तों ने इसे काट खाया था। परन्तु तुम सब कपूत हो। तुम सब कायर हो। सब मिलकर भी एक मां का ख्याल नहीं रख पाये। तुम सब इसके कातिल हो, हत्यारे हो...। परन्तु मैं मौन था। मेरी आंखें निरन्तर अश्रुधारा बहाये जा रही थीं।

सजल चौधरी ने सुझाया, 'अरे, ढौंठा टुंगरी के कुछ लोगों को बुला लाओ। ले जाकर इसका काम-क्रिया कर देंगे, नहीं तो पड़ी-पड़ी महकने लगेगी।'

'क्यों चाचा जी, हम इसका दाह-संस्कार नहीं कर सकते?'

सजल चौधरी के कुछ बोलने के पहले मैंने सुन्दरी के पैरों में हरकत होते हुए देखा। मैं चीखा, 'अरे, ये तो जीवित है!'

दिन के दस बज रहे थे। धूप में थोड़ी उष्णता आ गयी थी। दो घण्टे से धूप में पड़ी रहने और कम्बल की गर्माहट की वजह से शायद उसके शरीर की अकड़ ढीली होने लगी थी और प्राणवायु का पुनर्संचरण शुरू हो गया था। कुछ ही देर में उसने आंखें खोल दीं। मुझे अपने सामने झुका हुआ देखते ही उसकी आंखों में चमक आ गयी। उसने धीमे स्वर में शिकायत की, 'तुम कहां भाग जाता है रे?' इसके उपरान्त वह उठ बैठी और अचरज से भीड़ को देखते हुए चीख उठी, 'तुम लोग का करने आया है रे भड़ुआ लोग? का सोचा था, हम मर गये? तुम सब जान लो, जब तक सजल चोधरी जिन्दा है, हम नहीं मरेंगे।'

अब भीड़ छंटने लगी थी। सजल चौधरी पहले ही खिसक चुका था।

❑❑

585-बी, डी.एस. कॉलोनी,
हीरापुर, धनबाद- 826001 (झारखण्ड)
मो. 09905179746,